प्रमुख उपनिषद् साहित्य एवं वैदिक दर्शनों में आत्मा का स्वरूप

मनन जी* साधना देवराही**

सारांश - आत्मा शब्द से तात्पर्य हमारी आन्तरिक शक्ति से है, जो हमारी शारीरिक शक्ति का संचालन करती है। जिस प्रकार व्यक्ति पौष्टिक भोजन,व्यायाम आदि के माध्यम से शारीरिक शक्ति को बढ़ाता है, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति आत्म - शक्ति को तप एवं योगिक साधना से बढ़ाता है। आत्मा ही वह मूल शक्ति है, जो व्यक्ति के अन्दर सत् रूप में विद्यमान है, शाश्वत है तथा मृत्यु के पश्चात् भी जिसका विनाश नहीं होता है। इस विषय में भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं। इस आत्मा न तो शस्त्र द्वारा काटा जा सकता, न अग्नि द्वारा जलाया जा सकता, न जल द्वारा भिगोया, न वायु द्वारा सुखाया जा सकता है।[1] जो साधक आत्मा के इस वास्तविक स्वरूप को जान जाता है उसके अन्दर के मृत्यु आदि का भय दूर हो जाता है और ऐसे साधक आत्मा के विरूद्ध किसी प्रकार का कार्य नहीं करता है इसलिए आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानना आवश्यक है।

शब्द-कुंजी – आत्मा, आन्तरिक शक्ति, शारीरिक शक्ति, तप, गीता, अग्नि, वायु, योगिक साधना, शाश्वत आदि।

प्रस्तावना – श्री युक्तेश्वर गिरि जी द्वारा रचित 'कैवल्य दर्शनम्' पुस्तक में कहा गया है कि यह पवित्र आत्मा (कूटस्थ चैतन्य या पुरुषोत्तम) सनातन परमपिता ईश्वर की प्रकृति की ही अभिव्यक्ति है। अतः यह स्वयं ईश्वर ही है, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इसलिए उसकी प्रकाश किरणों के इन प्रतिबिम्बो को आभास चैतन्य या पुरुष या ईश्वर का पुत्र कहा जाता है।[2] ईशावास्योपनिषद में आत्मतत्त्व की महत्ता के विषय में कहा गया है कि आत्मतत्व द्वारा मोह एवं शोक से निवृत्ति हो जाती है।[3]

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पञ्च - महाभूत द्वारा निर्मित है और हमारा शरीर भी इसी पञ्च - महाभूत का ही परिणाम है। "यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे" अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड अर्थात् शरीर में है। जिस स्थिति में (व्यक्ति) यह (मर्म) जान लेता है कि यह आत्मा तत्त्व ही समस्त भूतों के रूप में प्रकट हुआ है, तो उस एकत्व की अनुभूति की स्थिति में मोह

अथवा शोक से परे हो जाते हैं। केनोपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा की प्राप्ति का साधन आत्म बल है अर्थात् इन्द्रियाँ जब विषयों की तरफ जाकर उस ज्ञान को प्राप्त करती हैं, वह बोध है। इसके ठीक विपरीत जब इन्द्रियाँ सांसारिक भोगों से परे वैराग्य भाव से जो ज्ञान प्राप्त करती हैं वह प्रतिबोध है। इसी 'प्रतिबोध' से ही मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त करता है और आत्म - शक्ति का जागरण हो जाता है। और व्यक्ति उसी आत्म – शक्ति से ही परमात्मा को प्राप्त करता है।[4]

कठोपनिषद में आत्मा के विषय में कहा है कि यह नित्य ज्ञानस्वरुप आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न ही मृत्यु को ही प्राप्त होता है। यह आत्मा न तो किसी अन्य से उत्पन्न हुआ है और न ही इससे ही कोई उत्पन्न हुआ है। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत और क्षय तथा वृद्धि से रहित है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह आत्मा विनष्ट नहीं होती है।[5]

प्रश्नोपनिषद में महर्षि पिप्पलाद अश्वल पुत्र कौसल्य द्वारा पूछे गये तृतीय प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि - प्राण की उत्पत्ति आत्मा से होती है। जिस प्रकार छाया देहधारी की देह से उत्पन्न होती है उसी प्रकार प्राण आत्मा से उत्पन्न होकर उसी के आश्रित रहता है। यह प्राण मन के संकल्प के अनुसार शरीर में प्रविष्ट होता है।[6]

मुण्डकोपनिषद् में आत्मा रूपी ब्रह्म - प्राप्ति के उपाय के विषय में कहा गया है कि आत्मारूप उस ब्रह्म की प्राप्ति सत्यभाषण, तपश्चर्या, सम्यग्ज्ञान, ब्रह्मचर्य आदि निश्चित व्रतों से होती है। वह शुभ (उज्जवल) ज्योतिष्मान् ब्रह्म शरीर के

* सहायक प्रोफ़ेसर, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला विश्वविद्यालय झुंझुनू राजस्थान, ईमेल- mananjee1993@gmail.com,

** शोध छात्रा, वेद विभाग गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार

अन्दर अधिष्ठित रहता है, उसे वही योगी देख पाते हैं, जो स्वंय को दोषों से मुक्त कर लेते हैं अर्थात् उस आत्मा की प्राप्ति शुद्ध अन्तःकरण के द्वारा प्राप्त होती है।[7] ऐतरेयोपनिषद् में आत्मा के कार्यों के बारे में कहा गया है कि जिस आत्मा की हम उपासना – अर्चना करते हैं, वह कौन है ? जिसके द्वारा प्राणी देखता है, जिसके द्वारा श्रवण करता है, जिसके द्वारा गन्धों को सूंघता है , जिसके माध्यम से वाक् शक्ति का विश्लेषण करता है और जिसके द्वारा स्वादु – अस्वादु का ज्ञान प्राप्त होता है। इन सबके पीछे आत्म शक्ति ही है।[8]

छान्दोग्योपनिषद् में आत्मा के विषय में कहा गया है कि यह आत्मा 'हृदय' में स्थित है। हृदय का अर्थ 'हृदि अयम्' अर्थात् वह हृदय में है। जो इस रहस्य को जानता है, वह उसे बाहर ढूंढ़ने के स्थान पर हृदय के भीतर ढूंढ़ता है वह स्वर्ग को पा जाता है।[9]

सांख्य - दर्शन में आत्मा के विषय में कहा गया है कि आत्मा समस्त सृष्टि के लिए होती है, इसलिए इन महत् आदि का आरम्भ किसी अपने स्वार्थ के लिए नहीं होता।[10] आगे सांख्यकारिका में पुरुष के अस्तित्व हेतु पांच अनुमानों को आधार बनाया गया है।[11]

1. संघात परार्थत्वात् – संसार के जितने भी भोग्य - पदार्थ हैं सभी आत्मा के लिए हैं।
2. त्रिगुणादि विपर्ययात् – पुरुष (आत्मा) तीनों गुणों से परे है।
3. अधिष्ठानात् – पुरुष (आत्मा) का कोई अन्य चैतन्य अधिष्ठाता है।
4. भोक्तभावात् – इस प्रकृति का भोक्ता है।
5. कैवल्यार्थ प्रवृते – यह आत्मा कैवल्य के लिए तत्पर रहता है।

योगसूत्र में आत्मा के विषय में कहा गया है कि वह आत्मा सर्वथा शुद्ध, निर्विकार, कूटस्थ असंग है, लेकिन अविद्या के कारण दृश्य (प्रकृति) के साथ संयोग के कारण अपने स्वरुप में स्थित नहीं हो पाता लेकिन जब अविद्या का नाश हो जाता है तो प्रकृति और पुरुष अपने – अपने स्वरूप में स्थित हो जाते है। यद्यपि चेतनमात्र (ज्ञानस्वरुप आत्मा) स्वभाव से सर्वथा शुद्ध (निर्विकार) है।[12]

न्याय दर्शन में बाहर प्रमेय आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग की बात कही है। इसमें भी सबसे प्रमुख आत्मा हैं।[13] आत्मा के छः गुण है - इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान।[14] वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति आत्मा के अस्तित्व में साधन है। प्रवृत्ति से तात्पर्य है - राग, प्रयत्नपूर्वक किसी कार्य में चेष्टा इसके विपरीत निवृत्ति अर्थात् वैराग्य, प्रयत्नपूर्वक किसी को छोड़ने हटाने की चेष्टा करना। प्रयत्न के द्वारा ज्ञान को धारण कर राग और वैराग्य की ओर चेष्टा करना इस बात का प्रमाण है बिना आत्मतत्व के व्यक्ति प्रयत्न कैसे कर सकता है। क्योंकि हर चेष्टा, हर प्रयत्न - इन सभी को प्रेरित करने वाली कोई न कोई शक्ति है , वही शक्ति "आत्मा" है।[15]मीमांसा दर्शन में विचारक आत्मा को शरीर, इन्द्रियों तथा बुद्धि से भिन्न मानते हैं। शरीर, इन्द्रिय और बुद्धि - ये सभी नष्ट होने वाले हैं। जिस समय बुद्धि अनुपस्थित रहती है आत्मा उस समय भी उपस्थित रहती है, जैसे कि निद्रावस्था में आत्मा इन्द्रिय नहीं है , क्योंकि इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा विद्यमान रहती है।[16]

वैदान्त दर्शन में आत्मा का स्वरूप में इस प्रकार से है – सभी दर्शन प्रस्थानत्रयी के आधार पर ही अपनी ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा और आचार्य मीमांसा को सिद्ध करते हैं किन्तु वेदान्तीय प्रतिपादन में भिन्नता का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में ब्रह्मसूत्र का अत्यधिक महत्व है। अतः उसी में प्रतिपादित 'आत्मा' पर विचार अपेक्षित है।

सांख्य - दर्शन में प्रकृति को "प्रधान" नाम से जाना जाता है अतः संशय होता है कि क्या "आत्मा" गौण है – "गौणश्चेन्नात्मशब्दात्"[17] अर्थात् 'आत्मन्' शब्द ही प्रधानता का अर्थ देता है, फलतः वह गौण नहीं हो सकता क्योंकि उपनिषदों में उसके लिए ही मोक्ष का उपदेश किया गया है।[18]

शास्त्र में आत्मज्ञान को मोक्ष का साधन कहा है। आत्मज्ञान का तात्पर्य है – प्रकृति एवं प्राकृत जड़ जगत् से भिन्न चिद्रूप आत्मा का साक्षात्कार।

सांख्य ने पुरुष को शुद्ध चैतन्य माना है। चैतन्य आत्मा में सर्वदा निवास करता है। आत्मा को जाग्रत, स्वप्नावस्था या सुषुप्तावस्था में से किसी भी अवस्था में माना जाय उसमें चैतन्य वर्तमान रहता है। इसलिए चैतन्य को आत्मा का गुण नहीं बल्कि स्वभाव माना गया है।[19]

सांख्य शंकर के आत्मा – सम्बन्धी विचार से सहमत नहीं है। शंकर ने आत्मा को चैतन्य के साथ आनन्दमय माना है। सांख्य आत्मा को आनन्दमय नही मानता है। आनन्द और चैतन्य विरोधात्मक गुण है।[20]

निष्कर्ष – आत्मा एक मूलभूत सत् है जो व्यक्ति में अन्तर्निहित होता है। यह एक तेजपुञ्ज है, जो शाश्वत तत्व है और मृत्यु के पश्चात् भी जिसका विनाश नहीं होता। यह कभी परिवर्तनीय नहीं होता। इनका स्वाभाविक गुण है प्रसार करना और परमात्म तत्त्व में विलीन होना। आत्मा के इस यथार्थ स्वरूप को जान लेने के बाद मनुष्य मोह और शोक से परे हो जाते है और आत्मनिष्ठ भाव को प्राप्त करते हैं।

सन्दर्भ सूची:

1. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ - गीता २.२३
2. तत्सर्वज्ञप्रेमबीजं परं तदेव कूटस्थचैतन्यं। पुरुषोत्तमः तस्याभासः पुरुषः तस्मादभेदः॥ - कैवल्य दर्शनम् १.५
3. यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ईशावास्योपनिषद १.७
4. प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते। आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥-केनोपनिषद २.४
5. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ - कठोपनिषद १.२.१७
6. आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्थस्मिञ्छरीरे॥ - प्रश्नोपनिषद ३.३
7. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यगज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। मुण्डकोपनिषद – ३.१.५
8. कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा येन - - - - - - चास्वादु च विजानाति॥ - ऐतरेयोपनिषद ३.१.१
9. स वा एष आत्मा हदि तस्यैतदेव निरुक्तं हद्ययमिति तस्माद्धदयमहरर्वा एवंविप्स्वर्गं लोकमेति॥ छान्दोग्योपनिषद – ८.३.३
10. आत्मार्थत्वात् सृष्टेनैषामात्यार्थ आरम्भः ॥ सांख्यसूत्र - २.११
11. सङ्घातपरार्थर्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्। पुरुषोऽस्ति भोक्तुभावात् कैवल्यार्थ प्रवृत्तेश्च॥ - सांख्यकारिका श्लोक सं०-१७
12. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः॥ योगसूत्र - २.२
13. आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्॥ - न्याय सूत्र १.१.६
14. इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो॥ - वही १.१.१०
15. प्रवृत्तिनिवृत्ति च प्रत्यगात्मनि दृष्टे परत्र लिङ्गम॥ - वैशेषिक सूत्र ३.१.१९
16. शरीरेन्द्रियबुद्धिभ्यो व्यतिरिक्तत्वमात्मनः। नित्यत्वं चेष्यते शेषं शरीरादि विनश्यति॥ - श्लोकवार्तिक - ७
17. ब्रह्म सूत्र - १.१.६
18. तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्॥ वही - १.१.७
19. सिन्हा प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, १३वॉ संस्करण, २०१६, पृ० सं० २४२
20. सिन्हा प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, १३वॉ संस्करण, २०१६ पृ० सं० २४३

❐